समकालीन लेखिकाओं के साहित्य में स्त्रीवाद

सं. डॉ. अमनदीप कौर

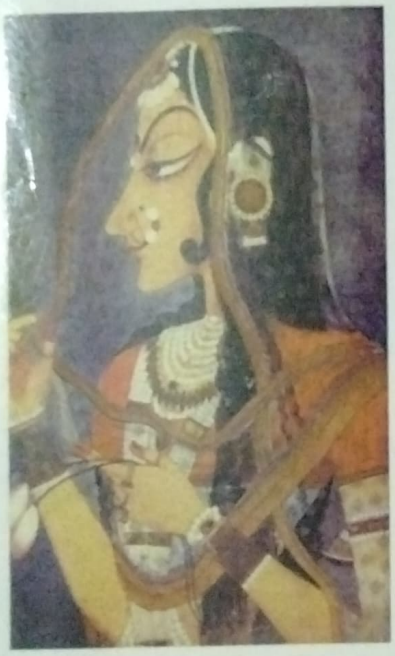
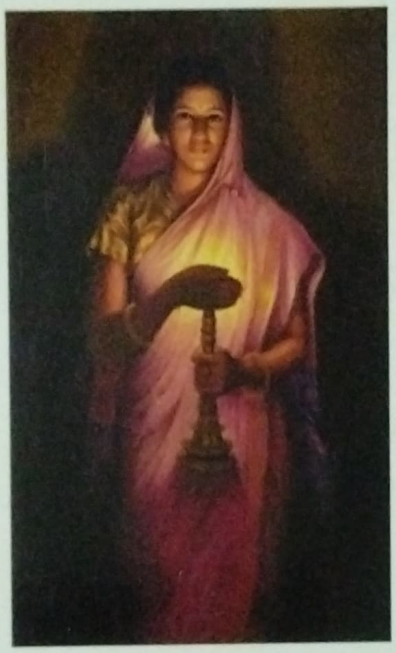
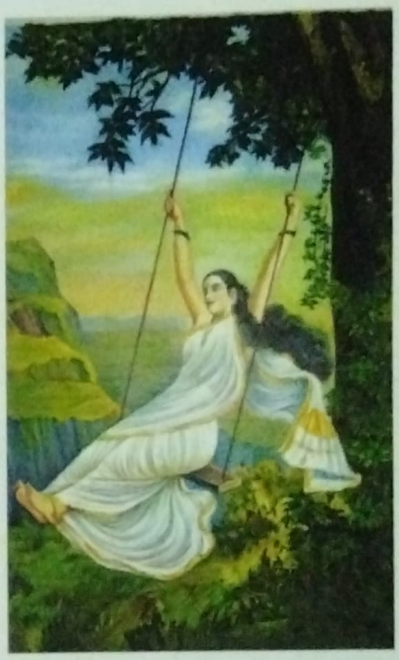
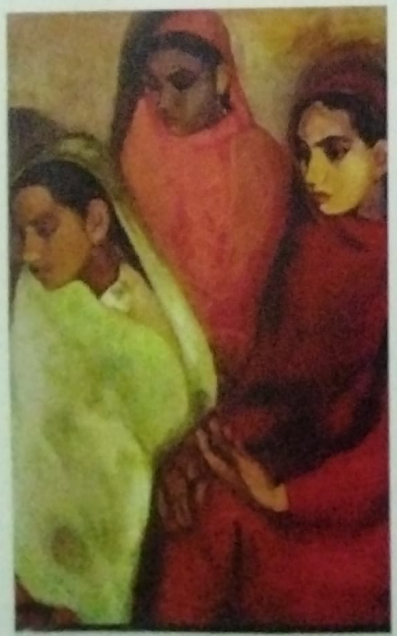

अनुक्रम

	सम्पादकीय	13
1.	समकालीन लेखिकाओं के उपन्यासों में स्त्रीवाद : सामाजिक एवं पारिवारिक सन्दर्भ में **डॉ. अमनदीप कौर**	17
2.	डॉ. माया दुबे की कविताओं में दार्शनिक चिंतन **डॉ. नरेश कुमार सिहाग**	27
3.	कृष्णा सोबती के कथा साहित्य में नारीवाद **डॉ. गीतू खन्ना**	32
4.	समकालीन लेखिकाओं के उपन्यासों में स्त्रीवाद **डॉ. शक्ति बुद्धिराजा**	45
5.	समकालीन प्रवासी लेखिकाओं के साहित्य में स्त्रीवाद **डॉ. अंजू बाला**	51
6.	समकालीन लेखिकाओं के नाटकों में स्त्रीवाद **डॉ. विजय वाघ**	56
7.	समकालीन हिन्दी लेखिकाओं के काव्य में स्त्रीवाद **डॉ. सिद्धेश्वर काश्यप**	63
8.	समकालीन हिंदी महिला उपन्यासों में चित्रित बदलती स्त्री दृष्टि- विवाह और प्रेम के सन्दर्भ में **डॉ. सलमी सेबास्टियन**	82
9.	समकालीन कहानियों में नारी अंतर्द्वन्द्व **डॉ. षेमी जॉन**	88
10.	समकालीन लेखिकाओं की आत्मकथाओं में स्त्रीवाद **आस्था कच्छप**	91
11.	हिन्दी में महिलाओं का नाट्य लेखन **डॉ. अनीश के.एन.**	95

कृष्णा सोबती के कथा साहित्य में नारीवाद

डॉ. गीतू खन्ना
प्रवक्ता, हिन्दी विभाग
गुरु नानक गर्ल्ज़ कॉलेज, संतपुरा
यमुनानगर -135001 (हरियाणा)
geetugngcollegeynr@gmail.com
9896157774, 9996190853

प्रस्तावना

हिन्दी उपन्यासों की परंपरा में कृष्णा सोबती का योगदान अद्वितीय है। पंजाब अंचल से कृष्णाजी का सीधा संबंध रहा है। उन्होंने वहाँ की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आदि परिस्थितियों का अंकन अपने कथा साहित्य में किया है। कृष्णा सोबती की नारी चित्रण के प्रति विशेष रुचि परिलक्षित होती है। पुरुष प्रधान भारतीय समाज में नारी शोषित रही है। इसलिए कृष्णाजी नारी स्वतंत्रता की प्रबल समर्थक रही हैं। कृष्णाजी का कहना है कि नारी आत्मसम्मान का जीवन व्यतीत करे। इसलिए इनके कथा-साहित्य की नारियाँ शिक्षा-दीक्षा पर जोर देकर निरंतर संघर्ष करती हुई आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर होकर स्वावलंबन भरा जीवन जीना चाहती हैं।

कृष्णाजी का कथा साहित्य उनके अनुभव की उपज है। पंजाब प्रदेश में उनके जीवन का कुछ कालखण्ड अवश्य बीत चुका है। भारतीय गाँवों की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक परिस्थिति को कृष्णाजी ने अपनी आँखों से देखा है। सामाजिक संदर्भ में सामाजिक जीवन, पारिवारिक जीवन, दाम्पत्य जीवन को चित्रित किया गया है। सांस्कृतिक संदर्भ के अंतर्गत परंपरागत संस्कार, तीज-त्यौहार, लोकगीत को प्रस्तुत किया गया है। धार्मिक संदर्भ में व्रत-उपवास, पूजा पाठ, कर्मकाण्ड, मंत्र-तंत्र, जड़ी-बूटियों में विश्वास आदि में कृष्णाजी के कथा साहित्य का अध्ययन किया गया है। कुछ प्रसिद्ध कथा प्रसंगों में नारी वर्णन इस प्रकार है :

'मित्रो मरजानी'

प्रस्तुत उपन्यास सन् 1967 में लिखा गया था। इसमें 111 पृष्ठों में लिखे गये मित्रो मरजानी के कथ्य और चरित्र ने एक लम्बे अरसे तक हिन्दी साहित्य में धूम मचा दी थी। सुमित्रवती अर्थात् मित्रो मरजानी के द्वारा जो दृढ़ निर्ममी और वाचाल किन्तु साथ ही साथ कोमल और बेझिझक चरित्र का निर्माण कृष्णा सोबती ने किया है वह सम्पूर्ण हिन्दी उपन्यास में अनूठा है। इस उपन्यास में सोबती ने नारी की पुरानी छवि एवं बिम्ब को एक चुनौती सी दी है। मित्रों के रूप में एक ऊपर की तरफ से पत्थर की तरह कठोर दिखने वाली लेकिन अन्दर से अत्यन्त मुलायम और स्नेहमयी औरत का चरित्र सोबती ने खूबसूरत ढंग से किया है। सच तो यह है कि मित्रो ने एक विवादस्पद नारी चरित्र की तरह हिन्दी साहित्य में प्रवेश किया है। मित्रो आधुनिक नारी की तरह न तो पावनता की प्रतीक है और न ही भावनालोक में विचारने वाली कोई रमणी, वह तो वास्तविक जगत की माँस से बनी नारी है जिसकी अपनी कुछ दैहिक आवश्यकतायें भी हैं। दैहिक आवश्यकताओं की पूर्ति उसे किसी पाप-बोध से नहीं भरती, बल्कि उसे वह एक सहज प्रक्रिया के रूप में स्वीकार करती है।

इस उपन्यास की सम्पूर्ण कथावस्तु 'मित्रो' के आस-पास ही घूमती है। सास-बहू के झगड़ों को लेकर अनेक उपन्यास हिन्दी साहित्य में लिखे गये किन्तु सोबती का यह परम्परागत झगड़े से कोई मतलब नहीं रखता। लेखिका ने नारी को नारी की दृष्टि से देखा है इसलिए मित्रो एक चुनौती के रूप में प्रस्तुत हुई है यह पंजाब की उस बेधड़क और निधड़क लड़की की कहानी है जो पंजाब के एक मध्यवर्गीय परिवार में बहू बनकर आयी है। मित्रो मरजानी की कहानी गुरुदास और धनवन्ती के भरे-पूरे परिवार से शुरू होती है। उनके तीन लड़के हैं बनवारी, सरदारी और गुलजारी और एक लड़की है जिसकी शादी कर दी गयी है। तीनों लड़कों की शादियाँ भी हो गई हैं। मित्रो मंझले लड़के सरदारी की. पत्नी है। बड़ी बहू सुहागवन्ती और उसका घरवाला बनवारी दोनों भले हैं और माँ-बाप की खूब सेवा करते हैं। छोटा पुत्र गुलजारी अपनी पत्नी फूलवन्ती के कहने में है और मित्रों अपने सरदारीलाल को मोम के गुड्डे से अधिक नहीं समझती, 'वह उसे बेधड़क-चूमते हुए कहती है सस्सी के पुन्नु। याद रख, खाण्ड का बतासा और नून का डला घुलकर ही रहेगा।'[1]

मित्रो का व्यक्तित्व विरोधी तत्वों से भरा हुआ है। पति से छल भी करती है और साथ भी देती है। फूलवन्ती से हँसी-हँसी में वह उसके मन की बात खोलकर रख देती है। जब सुहागवन्ती गर्भवती होती है तो वह चुहल करते-करते भीतर ही कहीं से रो पड़ती है। और सास को पहली बार महसूस होता है कि मित्रो कहीं दुःखी है वह मित्रों के साथ सहानुभूति जताने का प्रयास करती है पर मित्रो को यह स्वीकार

नहीं, वह आँखें तरेर कर कहती है... 'मेरा बस चले तो गिनकर सौ कौरव जन लूँ, पर अम्मा अपने लाड़ले का भी तो कोई आड़-तोड़ जुटाओ। निगोड़े मेरे पत्थर के बुत में भी कोई हरकत तो हो।'[2] लेकिन उसकी सास को मित्रों की इस बात पर भी विश्वास नहीं होता। वह मित्रों के जेठ से जब पूँछती है तो वह भी यह उत्तर देता है। 'सरदारी में कोई दोष नहीं अम्मा, यह जरनैली नार छोटे-मोटे मर्द के बस की नहीं है।'[3]

सैक्स की यह भूख मित्रों को वाचाल बना देती है वह जेठ-जेठानी, सास-ससुर तक का लिहाज नहीं रखती इस सैक्सुअल-फ्रस्टेशन के कारण वह जली-भुनी रहती है। लेकिन समय आने पर वह अपने पति एवं परिवार वालों के लिए बड़े से बड़ा त्याग करने में भी नहीं हिचकती, सबसे छोटा-बेटा गुलजारी जब ग्राहकों से पैसा लेकर फूलवंती पर उड़ा देता है तब मित्रो ही ऋण के बोझ से दबे परिवार को अपने गहने और रुपये देकर मुक्त करती है, फूलवंती एक झगड़ालू किस्म की औरत है। उसकी जान हमेशा गहनों में ही बसती है। सास धनवन्ती गाय की तरह है वह कुछ कह नहीं पाती, किन्तु मित्रो ईंट का जवाब पत्थर से देती है। फूलवंती अपने पति को पक्ष में करके घर में भी फूट डालती है और पति को लेकर मायके चली जाती है जहाँ कुछ दिन रहने के बाद गुलजारी की आँखों से परदा हटने लगता है और उसे अपनी भूल का पश्चाताप होता है। मित्रो एक ऐसी नारी की कहानी है जिसे वासनाओं ने सींचा है। वह नारी जीवन की सार्थकता अपनी देह सम्पदा को लुटाने और जीवन की सार्थकता को भोगने में मानती है परम्परावादी परिवार में दैहिक प्यास मिटाने में असीमित साधन उसे उपलब्ध नहीं है। घर के पुरुष सम्बन्धों की शालीनता में बधे अपनी सीमाओं का उल्लंघन नहीं करते, इससे मित्रों की प्यास और भी बढ़ जाती है उसे अपने देह सम्पदा का पूरा विश्वास है वह कहती है-'जब तक मित्रों के पास यह इलाही ताकत है मित्रो किसी की मार से मरती नहीं।'[4]

अन्त में मित्रो की सास इस भूख से तंग आकर उसे उसकी माँ के पास भेज देती है। लेकिन मित्रों की माँ बालो भी अपनी दैहिक प्यास बुझाने के लिए कई पुरुषों के साथ रह चुकी है उसकी प्रोढ़ा माँ उसे एक ही मर्द के साथ बँधा देखकर जल उठती है और अपने प्रेमी के पास उसे मौज करने के लिए भेज देती है लेकिन जब मित्रो तैयार होकर जाने लगती है तो उसकी माँ को यह असहनीय लगता है कि जो जवानी में उसके साथ रंगरलियाँ मनाता था वो अब उसको छोड़कर उसकी बेटी के साथ ऐसा करेगा और वह मित्रों को ऐसा करने से पूर्व ही लौटा देती है और जब तक उसके घर वाले सरदारी के पास खुद के पहरा देने की बात करती है तो मित्रों के अन्तर में एक तड़फ सी उठती है और वह दौड़कर सरदारीलाल के कमरे में जाकर अन्दर से कमरा बन्द कर लेती है इस प्रकार अन्त वह पति के प्रति समर्पित हो

जाती है। डॉ० पुरुषोत्तम ने इस उपन्यास के बारे में अपनी टिप्पणी देते हुए कहा है कि 'यह एक वैयक्तिक उपन्यास है। सोबती ने इस कृति में यह दर्शाया है कि पुरुष हो चाहे स्त्री, काम दोनों के लिए महत्त्वपूर्ण है।'[5] वास्तव में सोबती ने मित्रो के चरित्र को अंकित करने में साहस का काम लिया है। इस रचना की सबसे बड़ी उपलब्धि भाषा और शैली मानी गयी है। वास्तव में मित्रो एक चुनौती के रूप में सामने आती है। इस प्रकार यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि 'मित्रो मर जानी' उपन्यास साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

सूरजमुखी अंधेरे के

कृष्णा सोबती का एक बहुचर्चित लघु उपन्यास है। 126 पृष्ठों में लिखे गये इस उपन्यास की आधार भूमि सन् 1972 में रखी गयी। सोबती के उपन्यासों का हर विषय एक नयेपन का आभास देता है। प्रस्तुत उपन्यास अपनी परम्परागत लीक से हटकर नितान्त आधुनिक रूप में प्रस्तुत हुआ है। इस उपन्यास के विषय में कहा गया है कि "आधुनिक भावबोध की पीठिका पर मनोवैज्ञानिकी गूढ़तम पहेलियों को सादगी से आंक सोबती ने एक ऐसे वयस्य माध्यम और शिल्प की स्थापना की है जो एक साथ परम्परागत शिल्प और मूल्यों को चुनौती है।"[6]

इस उपन्यास की कथा तीन शीर्षकों में बंटी हुई है। पुल, सुरंगों और आकाश और इसकी नायिका है स्त्री जो कि मानसिक ग्रंथि का शिकार है। 'पुल' की रत्ती केशो-रीमा के परिवार में कुछ दिन रहने के लिए आई हुई है। उनके बेटे कुमू को वह बेहद प्यार करती है कभी-कभी वह परिवार से उखड़ जाती हैं। तो रीमा पूछती है 'किससे है यह लड़ाई? और केशो उत्तर देते हैं कि किसी से नहीं खुद रत्ती को अपने से'[7] और स्त्री गुस्से में मर कह उठती है 'तुम रीमा, तुम दोनों एक ढकी छुपी औरत को धूप दिखाने के बहाने तार-तार हुए उसके कपड़ों पर हाथ फेर करते हो। 'लेकिन दूसरे पल वह सहज हो जाती है और उसका दिल करता है कि "हाथ उठा सबके लिए दुआ माँग लो।'[8]

सुरगें स्त्री के अतीत में लौटने की प्रक्रिया है स्त्री बचपन में किसी के हाथों हवा घर के पास दुर्घटना ग्रस्त हो गयी थी तो स्कूल में डिम्पी और अन्जू उसे छेड़ते हैं वह उन्हें पीट देती है लेकिन वह बात याद करने पर रो पड़ती है घर लौटते हुए असद ने उससे कहा रत्ती अच्छी लड़की है 'प्यारी और बहादुर' उस रात असद के प्रति उसके मन में कुछ जगा था, लेकिन वो भी अल्लाह मियाँ को प्यारे हो गये, पूरी शाम रत्ती रोती रही। असद के न रहने पर रत्ती बिखर गयी, उसके बाद सोलह पुरुष उसकी जिन्दगी में आये, लेकिन उनके लिए वह एक ठण्डी औरत थी। राजन को तो उसके औरत होने में भी सन्देह था। इस प्रकार हर मर्द को वह किसी न किसी

तरह नकारती चली जाती है। रत्ती में संघर्ष करने का साहस है लेकिन कदम-कदम पर उसे विष के घूँट पीने पड़ते हैं। रत्ती को किसी ऐसे पुरुष का इन्तजार था जो उसके मन के भीतर, दर्द को जान सकें।

रत्ती को सदा दूसरों से उपेक्षा ही मिली, विवाहित श्रीपत रत्ती के सम्पर्क में आने के बाद उसे अपने सजे संजाये बैडरूम में ले जाता है किन्तु रत्ती को वह सजा हुआ कमरा असहनीय लगने लगता है। वह श्रीपत से कहती है कि जिस श्रीपत को मुझे जानना है उस श्रीपत को इस कमरे से बाहर होना चाहिये, फिर भी श्रीपत उसे अपने बाहों में कसना चाहता है तो उत्ती भागकर दूसरे कमरे में चली जाती है। श्रीपत उसे कटुवचन बोलता है रत्ती का जीवन एक रेगिस्तान की तरह सुनसान पड़ा है। प्रयत्न करने पर भी वह सहज नहीं हो पाती, लेकिन इसी पत्थर की अहिल्या के सम्पर्क में दिवाकर नाम का विवाहित पुरुष आता है जो बचपन से पड़ी उसकी मानसिक ग्रन्थि को खोलने में कामयाब होता है। दिवाकर श्रीपत की तरह रत्ती को अपने बैडरूम में न लेजाकर 'कार्वट पार्क' की सुनसान काटेज में ले जाता है। दिवाकर को वह पूर्णतः समर्पित हो जाती है। किन्तु दिवाकर की पत्नी का तार आने पर उसके स्त्री सुलभ संस्कार आड़े आ जाते हैं और वह दिवाकर को घर भेज देती है रत्ती फिर अकेली रह जाती है।

सोबती ने रत्ती के मन में उठते भावों को या दर्द को इतने हृदयस्पर्शी ढंग से व्यक्त किया है कि रत्ती के द्वारा कहा गया जैसे एक-एक शब्द सजीव हो उठता है। शिल्प और सांकेतिकता की दृष्टि से उनका यह उपन्यास श्रेष्ठ उपन्यासों की श्रेणी में आता है।

कृष्णा सोबती का "समय सरगम"

समय सरगम का प्रकाशन् सन् 2000 में हुआ इसमें सोबती ने इस उपन्यास में अपने आप को मनुष्य की मानसिकता को ही समय बताया है। और यह समय हमारी चेतना में संचित है हवा, धूप, पानी, वनस्पति आदि से सब समय के ही अधीन हैं इस उपन्यास के अन्तर्गत सोबती कहती है कि "पुरानी और नई-सदी के दो-दो छोरों को समेटती है 'समय सरगम' जीये हुए अनुभव के तटस्थता और सामाजिक परिवर्तन से उभरा, उपजा एक अनूठा उपन्यास है और फिर भारत की बुजुर्ग पीढ़ियों का आश्वान प्रत्याख्यान नया एवं पुराना दृष्टिगोचर होता है।"[9] प्रस्तुत उपन्यास में जब वृद्धावस्था में जाकर मानव के साथ किस-किस कठिनाईयों, हालातों, बुराईयों, मजबूरियों से होकर गुजरना होता है, दर्शाया है। उसमें पात्र आरण्या और ईशान, कामिनी हैं, एवं ईशान के युवा व पुत्रवधू जो कि ईशान को आराम से नहीं जीने देते हैं। इसमें सोबती जी ने एक स्त्री जाति का किस प्रकार से तत्कालीन एवं आधुनिक

समय में किस प्रकार से तंग, नंगा एवं मजबूरियों का लाभ लिया जाता है, दर्शाया है। तत्कालीन एवं आज की स्त्री की दशा का वर्णन किया है। आरण्या के साथ इस तरह की घटना घटती है। ईशान और आरण्या जैसे बुजुर्ग आपस में विरोधी विश्वास और निजी आस्थाओं के बावजूद साथ रहने के लिए ऐसे वातावरण का सृजन करते हैं। जहाँ पर कि पारिवारिक, सामाजिक और न ही मानसिक तनाव की स्थिति है। सोबती जी ने समय और समाज का मेल-जोल है वह बहुत हृदय स्पर्शी एवं मार्मिक है।

कृष्णा सोबती उपन्यासों के साथ-साथ कहानी के क्षेत्र में भी कम सहयोग नहीं दिया है उनकी पहली कहानी सन् 1944 में प्रकाशित हुई थी सोबती जी ने अभी तक दो ही कहानी संग्रह की रचना की है। उनकी कहानी 'बादलों के घेरे' सन 1980 में तथा 'ए लड़की' सन् 1997 में प्रकाशित हुई। बादलों के घेरे कहानी में कुछ का विषय प्रेम है। कुछ कहानियाँ भारत विभाजन के विषय को लेकर लिखी गयी हैं। कुछ कहानियाँ मनोवैज्ञानिक पर आधारित हैं। वस्तुतः नवीन शिल्प और नूतन दृष्टिकोण के कारण सोबती जी की कहानियाँ हिन्दी साहित्य में शख्त महत्त्व की अधिकारिणी हैं। नीचे सोबती जी की कहानियों की संक्षिप्त रूप से चर्चा की जा रही है।

सिक्का बदल गया

कहानी सन् 1948, जुलाई में प्रकाशित हुई। इस कहानी में भारत विभाजन के समय हुए भीषण अत्याचार तथा बदलते हुए मानवीय मूल्यों का स्वाभाविकता के साथ आकलन किया है 'सिक्का बदल गया' में शाहनी एक ऐसी ही नारी है जो अपने द्वारा पालित प्राण को विद्रोहिणी पाकर अन्तर की गहराईयों में अन्त व्यथा का अनुभव कर टूट जाती है इसी के साथ अपनी जमीन, घर, गाँव तथा देश के टूटने की सम्भावनायें भी व्यक्त हुई हैं, मुस्लिम प्रदेशों में जो हिन्दू किसी कारणवश बच गये थे उनको शरणार्थी के कैम्पों तक पहुँच की प्रक्रिया को यह कहानी सफलता पूर्वक उजागर करती है।

शाहनी के पति जो कि इस गाँव के नाम से प्रसिद्ध उनकी मृत्यु हो जाती है। शाहनी अकेली रह जाती है, शाहनी अत्यन्त उदार स्त्री है, जो समय-समय पर अपने सेवकों, पड़ोसियों आदि की धन के द्वारा मदद करती है लेकिन देश का बँटवारा होते ही सब मुसलमान शाहनी के विरुद्ध हो जाते हैं। शाहनी द्वारा पालित शेरा भी उसके कत्ल की योजना बना लेता है। गाँव के लोग सोचते हैं कि वह शाहनी को शरणार्थी कैम्प में पहुँचाकर बाद में उसका घर उसकी जमीन जायदाद का बँटवारा करें। जिस घर में शाहनी दुल्हन बनकर आई थी उस घर से निकलते समय उसकी जो

मनःस्थिति हुई है उसका बड़ा ही सजीव चित्रण सोबती जी ने किया है। गाँव के और उसके आसपास का बदला दृश्य शाहनी के अर्न्तमन के टुकड़े-टुकड़े कर देता है। खिन्न मन शाहनी अपने घर को छोड़ते वक्त अपनी, नगदी, गहना, कपड़ा भी वहीं छोड़ जाती है। शाहनी की विदाई के समय उसकी उदारता से अभिभूत होकर गाँव के लोगों की आँखों में आँसू आ जाते हैं।

यारों के यार

इस उपन्यास का प्रकाशन् सन् 1968 में हुआ प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से सोबती ने वर्तमान सामाजिक जीवन की विसंगतियों और समस्याओं का मर्मस्पर्शी चित्रण किया गया है। आर्थिक विवशता, जिन्दगी का कठोर यथार्थ और उसमें जीते रहने की लालसा ने उन्हें अपने ही वर्ग के प्रति विद्रोही बना दिया है।

प्रस्तुत उपन्यास में रिश्वत, गुटबंदी औरत और दफ्तरी जिन्दगी की अनेक बारीकियाँ खोली गई हैं, ब्राँच में भवानी बाबू हैड क्लर्क है। गोयल, जोहरी, माथुर, सक्सैना, अग्रवाल, सूरी, शर्मा और भारद्वाज आदि सब क्लर्क हैं। सरदार हजारा सिंह प्यारा सिंह जिनकी स्टैनों मिस तमाशा के जरिये महा नगरों के दफ्तरी माहौल की तमाम बारीकियाँ खुलती हैं। भवानी बाबू बेटे की मृत्यु के अवसर पर भी दफ्तर की फाइलों में खोये रहते हैं। सूरी जैसा इन्सान हर नये अफसर का रहस्य जानता है वह सच बोलना चाहता है लेकिन बस छटपटाकर रह जाता है सब इकट्ठे मिलकर हंसना, रोना, अफसरों की नई-नई पैंतरे बाजियों पर फिकरे कसना आदि करके अपना दिल बहला लेते हैं। उनकी मजबूरी यही है कि वह कुछ कर नहीं पाते, बस छटपटाकर रह जाते हैं। सोबती जी ने आज के क्लर्कों की मानसिक अतृप्ति, कुंठा, घुटन को लेकर इस उपन्यास की रचना की है।

'जिन्दगी नामा'

'जिन्दगी नामा' का प्रकाशन सन् 1979 में हुआ। प्रस्तुत उपन्यास बीसवीं सदी के आरम्भ में पंजाब प्रदेश के अंचल में रहने वाले लोगों की पारिवारिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक जिन्दगी का जीवन इतिहास प्रस्तुत करता है। जिन्दगीनामा स्वतंत्रता पूर्व के अखण्ड पंजाब की संस्कृति, उसके शांत और सद्भाव पूर्ण जीवन को ही चित्रित नहीं करता बल्कि उसमें निहित मानवीय मूल्यों के अन्तर विरोध को भी साकार करता है। यह अन्तर्विरोध गहरी पीड़ा से पैदा होते हैं -'कौन जानेगा कौन समझेगा, अपने वतनों को छोड़कर और उनसे मुँह मोड़ने के दर्दों की पीड़ा को लहराते रहेंगे। खुली डुली हवाओं के झोके इसी धरती पर इसी तरह, हरं खेत मौसम में इसी तरह बिल्कुल इसी तरह सिर्फ हम नहीं होंगी। नहीं होंगे। फिर कभी नहीं होंगे

नहीं।'[10] उपन्यास के आरम्भ में कविता की यह पंक्तियों द्वारा लेखिका ने अपने वतन से, पुरखों की यादों से, नदी नालों से, खेत खलियानों से भावभीनी श्रद्धांजलि ली है।

जिन्दगीनामा अपने विशेष आंचलिक स्वरूप एवं सद्भावपूर्ण चित्रण के द्वारा पंजाबी संस्कृति का महाकाव्य बन गया है। इसकी कथा दो खण्डों में विभाजित है। उपन्यास का दूसरा भाग प्रकाशित भी हुआ। उपन्यास के कुछ अंश कृष्णा सोबती के प्रकाशित पुस्तक 'सोबती एक सोहबत' में प्रकाशित हुए हैं। प्रथम खण्ड में पंजाब की सांझी संस्कृति को रूपायित किया गया है। इस उपन्यास को कोई भी पात्र प्रमुख नहीं माना जाता है और न ही इसकी क्या किसी विशेष बिन्दु पर जाकर खत्म होती है। वास्तव में यह उपन्यास पंजाब प्रदेश की भिन्न-भिन्न जातियों के रहन-सहन, रीति-रिवाज, खान-पान, वेशभूषा आदि का ऐतिहासिक दस्तावेज प्रस्तुत करता है। जिन्दगीनामा से पंजाब की मिट्टी की सोंधी खुशबू उसकी लोक कथायें जिसका एक सिरा पुराणों को छूता है तो दूसरी ओर स्वतंत्रता पूर्व के लोक मानस को। सोबती को उसी सांझी संस्कृति का सम्मोहन आज भी आकर्षित करता है।

जिन्दगीनामा की कहानी शाहनी और शाह से होती हुई अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफत पर आकर खत्म होती है। शाह जी जमीनों के मालिक हैं और छोटे किसान उनके कर्णधार हैं। शाहों का दबदबा, गाँवों के चारों तरफ है यहाँ तक कि थानेदार भी उनका कहा मानता है छोटे-मोटे झगड़ों का निपटारा शाहजी ही करवा देते हैं। कई लोग अंग्रेजों के राज को ही ज्यादा पसन्द करते हैं और जिनका गुजारा नहीं होता उनके बेटे फौज में भर्ती हो जाते हैं उनके कमाये हुए पैसे से गाँव का भी नक्शा बदल रहा है। कहीं-कहीं पक्के घर बन गये हैं। शाह लोग अपने नीचे काम करने वाले किसानों की पूरी देखभाल करते हैं। किसी-किसी का लगान भी माफ करवा देते हैं। शाहजी कुछ पढ़े-लिखे होने के कारण उनका व्यक्तित्व गाँव के अनपढ़ लोगों पर कुछ रौबीला सा दीख पड़ता है तभी तो उनके घर में काम करने वाली मुस्लिम रानियाँ शाहजी पर जान छिड़कती हैं लेकिन यह कथा विशेष सूत्र को लेकर नहीं चलती, इसमें तो असंख्य लोग और उनकी कथायें भरी पड़ी हैं जैसे-गोंभा और भोकली द्वारा सौती के, समद बीबी और बेगमा द्वारा देवरानी जेठानी के रसूल और उसकी सास द्वारा सास-बहू के झगड़ों को दर्शाया है, जायदाद के लिए भाई-भाई का कत्ल, भूमि पर शाहों का मालिकाना अधिकार, कर्ज न चुकाने पर गरीब किसानों से जमीन को हथियाना, साहूकार किसान के क्रूर रिश्तों को उजागर करता है।

'जिन्दगीनामा' में सब कुछ घटित होता है जो मानवीय सम्बन्धों को बिगाड़ता है और बनाता भी है। इसमें माँ-बाप भाई-बहिन और दूसरे सभी रिश्तों की वो पवित्र मर्यादा है जिनसे संस्कृति हमेशा जीवित रहती है। हिन्दू-मुसलमानों का मिल-जुलकर रहना, एक-दूसरे के सुख-दुःख में शरीक होना, शाह के पास चौपाल पर दोनों वर्गों

के लोगों का बैठकर वार्तालाप करना, शाहों का सारे पिण्ड के सुख-दुःख में शामिल होना, हुसैन के लड़के होने की बधाई देना, मुकद्दमा जीतने पर शाहों का विपक्ष के लोगों के साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना आदि बातें मानवीय सम्बन्धों के अटूट रिश्तों को रेखांकित करती है।

जिन्दगीनामा में घर बाहर के कामों के साथ तीज त्यौहारों के मौके भी इतने आते हैं कि औरतें जगह-जगह पर गीत गाती बुल्लेशाह उठाती नज़र आती हैं। सोबती ने तब के प्रचलित अन्धविश्वासों, टोटकों, धार्मिक आडम्बरों आदि का सूक्ष्मता से वर्णन किया है। लड़का होने पर मिठाईयाँ बाँटना, बहिनों द्वारा दाई को मेवे का कटोरा देना, बच्चों को नज़र से बचाने के लिए काला टीका लगाना, पान्दे जी द्वारा पाँच रूनों का अमृत पिलाने पर सगुण इकट्ठे होना, बच्चों के मदरसे आदि की रीति, सात घरों से भीख माँगकर पूरी करना आदि का वर्णन किया गया है। लोहड़ी, नवरात्रि, संक्रान्ति, ईद आदि त्यौहारों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। डॉ. देवराज उपाध्याय के मत में "यदि किसी को पंजाब प्रदेश की संस्कृति, रहन-सहन, चाल-चलन, रीति-रिवाज की जानकारी प्राप्त करनी हो तो इतिहास की बात जाननी हो, वहाँ की दंतकथाओं में प्रचलित लोकोक्तियों तथा 18वीं व 19वीं शताब्दी की प्रवृत्तियों से अवगत होने की इच्छा हो तो जिन्दगीनामा से अन्यथा कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है'[11] और डॉ. यश गुलाटी के शब्दों में 'साहित्य केवल प्रमाण पत्र नहीं अपितु लोगों की जिन्दगी का जीवन्त दस्तावेज है। कृष्णा सोबती के उपन्यास इस परिभाषा को पूर्णतः चरितार्थ करते हैं।'[12]

प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने भक्ति की अपेक्षा कार्य पर अधिक जोर दिया है। उन्होंने तो मनुष्य को ही अवतार माना है वास्तव में जिन्दगीनामा में मानव जीवन की श्रेष्ठता तथा मानव को मानव से प्रेम करने का सन्देश देता है। इस उपन्यास में यह दिखाया गया है कि अगर हिन्दू, मुसलमानों से प्यार, आशा, हमदर्दी एक-दूसरे के लिए, न होती तो ये दो संस्कृतियाँ कब की अलग हो गयी होतीं और अन्त में कृष्णा सोबती ने अपने ही शब्दों में "जिन्दगीनामा जिन्दगी का यह भाग पंजाब की हरी-भरी, चनाब और झेलम नदीं, गेहूँ की बालियाँ सुनहरी धूप, सरसों के पीले खेतों, मुटियारों और नखरीली मूँछों वाले वहाँ वासियों, चूढ़ा छनकती शरबती आँखों वाली नयी ताजी बहुरियों, फुलवारियों, चरखों, रंगीली पीढ़ियों, महीन सूत, तन्दूरों सेन थी।

महक वाली रोटियों, बैलों व हलों, गठीले नौजवानों, पंजाबी सूरमों, बैसाखी, लोहड़ी, फकीरों, मनोतियों, अल्हड मुटियारों, चौड़े सीने वालों, कड़े जिगरे वाली छोरियों, पालकियों और देश पर मर मिटने वाले यौद्धाओं की कहानी करने वाला ऐतिहासिक दस्तावेज है। इसके इतिहास में तख्तगाहों को प्रमाणों और सबूतों के साथ दर्ज नहीं किया गया, बल्कि उसकी जगह इसमें दर्ज है लोक मानस की भागीरथी

के साथ बहता / पनपता और फैलता और जनमानस की सांस्कृतिक पुख्तापन में जिन्दा रहता आदमी का इतिहास।'[13]

डार से बिछुड़ी

सन 1958 में प्रकाशित 'डार से बिछुड़ी' कृष्णा सोबती जी का पहला उपन्यास है। यह पंजाब की पृष्ठभूमि पर लिखा गया उपन्यास हैं, जिसमें परंपराओं व रुढियों में जकड़ी एक नारी के फिसल कर, भटकने की कहानी है। अपनी इस जीवंत रचना में लेखिका ने नारी-मन की करुण कोमल भावनाओं, आशा-आकांक्षाओं और उनके नष्ट हो जाने से हृदय में उठने वाले हाहाकार का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है।

'डार से बिछुड़ी' की कथा पाशो नामक सीधी सादी, अल्हड युवती के इर्द-गिर्द घूमती है। पाशो एक ऐसे रुढिबद्ध परिवार का हिस्सा है जहाँ जन्म से पहले ही लड़की की नियति निश्चित कर दी जाती है। पालन पोषण के समय उसे बार-बार एहसास दिलाया जाता है कि वह लड़की है। पाशो जब भी नानी के साथ ठाकुर द्वारे जाती तो नानी अकसर तेवर चढाकर सिर ठोकती हुई कहती :

"रब्ब तुझे सँभाले, अरी कपडा नीचे रखा कर।"

कुएं से पानी भरकर लाती तो मामी आँखे तरेरती -

"पसार छूने लगी -न शर्म, न हया!
अरी, ओढनी अब तेरे गले तक से उठने लगी...।"

पुराने संस्कारों में जकड़े ऐसे परिवार में तो यूँ भी लड़की को अपनी उमंगों को दबाकर जीना पड़ता है और उस पर भी पाशो को तो अपनी माँ के संदिग्ध चरित्र की दोहरी मार झेलनी पड़ती है। पाशो की माँ खत्री होने के बावजूद शेखजी के घर जा बैठी थी, अतः पीहरवालों को फूटी आँख न भाती। माँ के लांछन का भाजन पाशो को बनना पड़ता है। उसे बात-बात पर डाँट-फटकार, तानों का सामना करना पड़ता है, जैसे 'अरी कुऐ में डूब मरी थी तेरा बीज डालनेवाली! अब तू सँभलकर साँस भर ..।'[14] माँ के द्वारा उठाये गये कदम के कारण पाशो पर नानी और मामा-मामियों का कडा नियंत्रण रहता है। सिर पर लगी चोट के निशान को लट द्वारा छिपाने का पाशों का प्रयास घरवालों को ऐसा खटकता है कि तुरंत नाइन बुलवाकर पाशो का पूरा सिर गुँथवा दिया जाता है। इतना नहीं फतेहअली के लड़के करीमू को देख मुस्करा-भर देने के अपराध में पाशी को न केवल मार खानी पड़ती है बल्कि मामाओं द्वारा उसे मेले में जाकर मारने की योजना बनाई जाती है। मगर सौभाग्य से पाशो को इसकी भनक पड़ जाती है और वह रात के अंधेरे में घर की दहलीज लाँघकर पहुँचती है अपनी माँ और शेखजी के घर।

यहीं से पाशो का जीवन नई करवट लेता है। शेखजी पाशो का ब्याह दिवानजी

से करा देते हैं और पाशो की दुनिया सुखों से भर जाती है। जिंदगीभर लाड़-प्यार के लिए तरसी पाशो यहाँ मालिकन बन राज करती है। मौसी के स्नेह और आशीर्वाद की उस पर निरंतर वर्षा होती रहती है 'अरी लाडो, ऊँचे पलंग चढ़ आराम कर और बेल बढा दिवानों की और पाशो खुशवंत की मां बनती है। लेकिन कुदरत से पाशो का यह सुख अधिक दिनों देखा नहीं जाता और दुर्भाग्य की एक ही ठोकर से उसका सब-कुछ लुट जाता है।' दिवानजी की मौत से पाशो की दुनिया ही उजड़ जाती है और पाशो दर-दर की ठोकर खाती फिरती है।

अब पाशो दिवानजी की पाशो न रहकर मात्र एक हाड़-माँस की औरत रह जाती है जिसका रूप-यौवन सब की लोलुप आँखो के आकर्षण का केन्द्र बन जाता है। हरेक उसे अपनी मिल्कत मान आधिपत्य जमाना चाहता है। दिवानजी की मृत्यु के बाद घर और पाशो पर बरकत व उसकी माँ अपना हक जमाते हैं। पाशो से बाँदियों की तरह काम लिया जाता है। बरकत की माँ मौसी से कहती है "अरी समझा इस कुलच्छनी को! घर के खसम की चिलम भर देगी तो पटरानी क्या गोली बन जाएगी इतना ही नहीं, बचने के अनेक प्रयासों के बावजूद पाशो बरकत की हवस का शिकार होती है और बाद में लाला के हाथों बेची जाती। उसका बेटा भी उससे दूर हो जाता है। बरकत के लाला और उसके तीन बेटों की चाकरी, फिर मँझले का आधिपत्य। मानो पाशो व्यक्ति न होकर कोई चीज वस्तु हो जिसे जो मन चाहे सो उठाकर ले जाता है। उससे अपेक्षा की जाती है कि वह जहाँ रहे घर सभाले, बिस्तर गर्म करे और वंश चलाने के लिए संतान दे 'बेटी, नहीं जानती, तू नहीं जानती। राजे से हाथ बाँध सौ-सौ मिन्नतें की थीं एक रात को रानी समझ तुम्हारी ही -झोली में लाल डाल जाए। पर मरनेवाले के बचना जितनी बार कहा, मुझे हाथ से बरज दिया 'बड़ी माँ, जिसे इस मुँह से एक बार बहन पुकार लिया, वह जीते जी बहन ही रहेगी, कोई दूजी नहीं।'

हर्ष और विषाद की एक अपूर्व अनुभूति पाशो के हृदय को एक साथ मथती रहती है और वह उस अवस्था में पहुँच जाती है जहाँ न हास्य है, न रुदन और न ही जीवन की क्रूर परिस्थितियों से शिकायत। पाशो गुजरे वक्त को, सुखद पलों को छाती से चिपकाये जहाँ है वहाँ की खैर मनाती रहती है। कभी बीवी तो कभी बहन बनकर रहती है तो कभी जान बचाने के लिए पशु के समान इस घर से उस घर भागती है या खरीदी बेची-छीनी जाती है। जहाँ है उसी को नियति मानकर स्वीकारने की कोशिश में वह सिर्फ बीते संबंधों के कृतार्थ भाव से जीती है। नानी, मामा-मामी, भाई-माँ, बेटा, इसके संबंधों की दुनिया इन्हीं चार छः नामों के ईद-गिर्द है, इन्हीं बिछुड़ों से मिलने की आस में वह हर दुःख उठाकर भी जीती है।

और अंत में पाशो की यह आस पूर्ण भी होती है, उसके जीवन की दुःखद

घड़ियों का अंत होता है। अंग्रेजों के साथ हिन्दुस्तानियों की लड़ाई में बहुत कुछ बिखरता है, खत्म होता है। लेखिका ने लिखा है 'माँओं के लाल गए। बहनों के वीर गए। सुहागिनों के सिरों की सरदारियाँ गईं और नया राजवालों का राज-पाट। पिछले पक्ख तो घर-घर जवानियाँ सोभती थीं, आज सब-कुछ गँवा-लुटा माँओं की झोलियाँ खाली हो गईं। न बाँहें रहीं, न जो बाँहों के छनकार! नगर-भर में किवाड़ चढ़ गए, कुंडियाँ लग गईं और घर घर सोग सयापे छा गए। हवेली के ऊँचे कपाटों लोहे की साँकलें चढ़वा बड़ी माँ 'सेवादारनों टहलनों के संग पिछले आँगन जा बैठी।'

इसी बिखराव में पाशो शेखजी के बेटे अर्थात् अपने भाई के वहाँ पहुँच जाती है और बिछुड़ी बिटिया अपनी डार से जा मिलती है। पाशो की माँ कहती है 'शेखजी, माँ जिन्हा से कहें दिवानों के लाडले को लाए। बेटी के वीर को बुलाएँ -आज उन्हीं के पैरों का सदका, बिछुड़ी बिटिया हमारी डार में आन मिली!'

एक स्त्री के नजरिये से कृष्णा सोबती को जब जब देखा है लगता रहा है 'मित्रो' का बाना पहनकर उन्होंने जो धमाका किया, वह तो होना ही था। बीसवीं शताब्दी पहली सी सदियों की तरह मामूली तो कभी रही ही नहीं। दो विपरीत ध्रुवों को छूते प्रारम्भिक और आखिरी छोर। एक ओर ब्लैक आउट की रात सा अंधेरा सूना और दूसरे भयावह तो दूसरे छोर पर दीवाली की जगमगाहट दीवानगी और सैलीब्रेशन की मजबूरी एक छोर पर आश्चर्य मिश्रित श्रद्धा जगाने के प्रयास में रचा गया। 'भाग्यवती' का निस्पंद रोल मॉडल तो दूसरे छोर पर कितनी ही ऐश्वर्याओं सुष्मिताओं के पिक्चर से तैयार वर्षा वशिष्ठ (मुझे चाँद चाहिये) का व्यक्तित्व जो स्त्री की 'वस्तु' से 'व्यक्ति' और 'व्यक्ति' से 'वस्तु' बन जाने की सुविधाभोगी मजबूरी को रेखांकित करता है। कहीं-कहीं पुनः 'मूषिको भव' वाली कथा के दम्भ, अज्ञान और खोखलेपन की याद दिलाते हुए 'मित्रो' न होती तो क्या हाड़ माँस से बनी औरत हमें कभी दिखती? मित्रो न होती तो क्या स्त्री की कुल्टा बनाम सती की छद्म छवि कभी टूटती? मित्रों न होती तो क्या विद्रोह विवेक और ओज को आँसुओं से लाती शरच्चन्द्रीय नायिकायें हमारा आदर्श को राह पर लाने का गदगद विश्वास हम संजोए न रहते? मित्रो न होती तो इदन्नमम की मंदा अपने लक्ष्य को इतने सन्तुष्ट ढंग से चिन्ह पाती? मित्रो न होती तो क्या 'चाक की सारंग' पति समेत पूरे समाज से अकेली टकराने का हौसला अपने भीतर टटोल पाती? मित्रो न होती तो क्या 'कठगुलाब' की स्मिता आत्मग्रस्ता और हीनता-बोध की तोता रटंत भाषा छोड़ अपने को पैनी नजर से देखने और तौलने का साहस बटोर पाती? मित्रो न होती तो औरत और मर्द को दो आधी-आधी दुनियाओं में बाँटकर अलगाने की साजिश समझ आ पाती? मित्रो न होती तो क्या औरत और मर्द की सांझी दुनियाँ में इन्सानी पहचान की जरूरत समकालीन महिला का मूल स्वर बन पाती?

बस यही है वह स्थल जहाँ कृष्णा सोबती नाम न रह कर प्रेरणा बन जाती है। संज्ञा न रहकर एक विशेषण। बहुत कुछ हासिल कर लेना बड़ी बात नहीं। बड़ी बात है कुछ हासिल करने के लिए एक दिशा पाना उस दिशा की ओर कदम बढ़ाना पहली बार कुछ कदम अकेले चलना पड़ता है फिर तो कारंवा जुड़ता ही चलता है इतिहास साक्षी है। स्त्रीत्ववादी परिप्रेक्षण के कारण ही कृष्णा सोबती पितृसत्तात्मक समाज की इतनी कटु, गम्भीर, तीखी आलोचना कर सकी है कि किस प्रकार पितृक मूल्य स्त्री को 'अन्या', उपेक्षित बनाते हैं। उसका जबरदस्त शोषण परम्पराओं, रीति-रिवाजों, मूल्यों, संस्कारों के नाम पर ही हो रहा है। वह पिस रही है, उसका स्वत्व, आवाज, अस्मिता छीन ली गयी है। वह स्वत्वहीन, वाणीहीन, प्रतिक्रिया हीन, अस्मिता हीन, वह इन स्थितियों में कैसे जी रही है? इन स्थितियों को कैसे झेल रही है? और पितृ समाज उसके संघर्ष को कैसे रौंदता है ऐसा चित्रण सोबती के लेखन में किसी न किसी प्रकार से हुआ है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. कृष्णा सोबती, मित्रो मरजानी, पृष्ठ-45 राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
2. कृष्णा सोबती, मित्रो मरजानी, पृष्ठ-72, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
3. मित्रो मरजानी, कृष्णा सोबती पृष्ठ-69, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. कृष्णा सोबती, मित्रो मरजानी, पृष्ठ-4, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. पुरुषोत्तम दुबे व्यक्ति चेतना स्वातंत्र्योतर हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ-371
6. कृष्णा सोबती, सूरजमुखी अंधेरे के, पृष्ठ-15
7. कृष्णा सोबती, सूरजमुखी अंधेरे के, पृष्ठ -36
8. कृष्णा सोबती, सूरजमुखी अंधेरे के, पृष्ठ -36
9. कृष्णा सोबती, समय सरगम, पृष्ठ -18
10. कृष्णा सोबती, जिन्दगीनामा, पृष्ठ -27
11. समीक्षा वर्ष 13. अंक 4 जनवरी-मार्च 1980 पृष्ठ-21
12. कृष्णा सोबती, जिन्दगीनामा, पृष्ठ-45
13. कृष्णा सोबती, जिन्दगीनामा, पृष्ठ -52
14. कृष्णा सोबती, डार से बिछुड़ी, पृष्ठ -17